ज़िन्दगी का सिस्टम

लेखक : आयतुल्लाहिल उज़्मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी
सम्पादन : नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

(क़िस्त : 18)

तशह्हुद

दूसरी रकअत के दूसरे सजदे के बाद बैठ कर तशह्हुद पढ़ना चाहिए। नमाज़ एक ऐसी इबादत है जिसका कुबूल और उसका सही होना उसूल (मानने की बातों) के सही होने पर निर्भर है इसलिए कर्म को ईमान/विश्वास की बुनियाद पर होना चाहिए और ईमान को शुरू से आख़िर तक बाक़ी रहना चाहिए अगर खुदा न करे बीच नमाज़ में किसी के मन में खुदा की तौहीद (एक होना) या रसूलल्लाह (स0) के रसूल होने के ख़िलाफ़ विश्वास पैदा हो जाए तो वह नमाज़ बिल्कुल बेकार हो जाएगी। नमाज़ के पहले इन विश्वासों का ख़्याल और एहसास, और एलान और ज़ाहिर होना अज़ान व एक़ामत में हो जाता है। उसके बाद नमाज़ के आख़िर में और अगर चार रकती नमाज़ है तो बीच में (तशह्हुद की हालत में) भी फिर वह ईमान ज़ाहिर हो जाता है जिससे मालूम होता है कि शुरू से आख़िर तक कर्म, ईमान और अक़ीदे/विश्वास के तहत है। वह कहता है: *"अश–हदु अल् ला इला–ह इल्लल्लाहु वह–दहु ला शरी–क–लहु व अश–हदु अन्ना मुहम्मदन अ़ब्दुहु व रसूलुह अल्ला हुम्म स्वल्लि अ़ला मुहम्–म–दिव् व आलि मुहम्मद"*

"मैं गवाही देता हूँ कि नहीं है कोई खुदा सिवाए अल्लाह के, वह अकेला है, उसका कोई शरीक नही और मैं गवाही देता हूँ कि हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0) उसके ख़ास बन्दे और उसके रसूल/भेजे हुए दूत हैं।" यह बात ख़ास ध्यान देने वाली है कि रसूल स0 के लिए खुदा का बन्दा होने का ऊँचा दरजा है जिसे रसूल[अ0] होने से आगे रखा गया है इसलिए उसका बन्दा होने की गवाही रसूल होने से पहले होती है। दोनों गवाहियों के बाद खुदा से रसूल (स0) के लिए ख़ास रहमत की दुआ की जाती है और कहा जाता है "ऐ ख़ुदा! अपनी रहमत भेज मुहम्मद (स0) और मुहम्मद की आल (सन्तान/औलाद) (स0) पर" इससे अपने दीन के रहबरों के साथ अपने अक़ीदे के खुलूस भरी श्रद्धा (मन से लगाव) ज़ाहिर होती है।

आख़री दो रकतें

अगर सुबह की नमाज़ है तो वह दो ही रकत पर ख़त्म हो जायेगी लेकिन अगर मग़रिब की नमाज़ है तो एक रकत और, अगर जुहर, अस्र, या इशा की नमाज़ है तो दो रकते इसके बाद और पढ़ी जायगी। इन रकतों में चाहे सूरह हम्द पढ़े या तसबीहाते अरबअ यानी *"सुब्हानल्लाहि, वल्–हम्दु लिल्लाहि, व–ला–इला–ह इल्लल्लाहु वल्लाहु अक्बर।"*

इन तसबीहाते अरबआ (चार तस्बीहें/खुदा की पाकी/पवित्र होना) की बड़ाई का बस इससे अन्दाज़ा कर सकते हैं कि इन दोनों रकतों में वह सूरा हम्द की जगह पढ़ी जा रही है।

इसका नाम तस्बीहात है मगर असल में उनमें सिर्फ़ तसबीह नहीं है इनमे तस्बीह भी है और ख़ुदा की हम्द/संस्तुति और तौहीद (एक होना) भी है और फिर तकबीर (खुदा का बड़ा होना)। और चूँकि आदमी अल्लाह की बड़ाई और उसके असल गुणों (खासियतों) की मारेफ़त (पहचान) नहीं सकता है मगर इस तरह की कमियों और पैदा होने वाले के गुणों को उससे अलग समझें। इसलिए तसबिह को पहले रखा गया है। और दूसरी चीज़ों को बाद में।

हदीसों में फ़र्क़ की वजह से इस बात में फ़र्क़ हो गया है कि ये तसबीहात एक मर्तबा पढ़ी जायें या तीन मरतबा, लेकिन तीन मरतबा पढ़ने के सही होने में कोई शक नहीं और इसी पर चला जा रहा है।

इबादत के हिस्सों में रंगा रंगी

जो बात बराबर एक ही तरह पर होती रहे और एक हालत पर रहे उसका लगाव दिमाग़ से टूट जाया करता है और नयापन या रंगा रंगी न होने की वजह से ज़ेहन को तवज्जो रखने की ज़रूरत नहीं होती लेकिन अगर काम में रंगा रंगी और नयापन (भिन्नता) हो और हर जगह (Step) के लेहाज़ से कोई ख़ासियत रख दी गई हो तो इन्सान का ध्यान नया होता रहता है और उसे ध्यान का लगाना ज़रूरी होता है इस वजह से नमाज़ की क़िस्मों और उनके हिस्सों में रंगारंगी रखी गयी है, ये टॉपिक बहुत बड़ा है, इसमें नमाज़ की क़िस्में भी शामिल होती हैं। मसलन नमाज़े आयात का एक ख़ास रंगढंग, नमाज़े ईद की एक ख़ास कैफ़ियत (तरीक़ा), नमाज़ जुमा का अलग अन्दाज़ और रोज़ाना की नमाज़ का एक ख़ास तरीक़ा अगर सब नमाज़ें एक ही तरह होतीं तो इस बात की ज़रूरत नहीं थी कि नमाज़ पढ़ते वक़्त ये ख़्याल भी पैदा हो कि ये कौन सी नमाज़ है। लेकिन तरीक़ा अलग–अलग है इसलिए ज़रूरी हो गया कि नमाज़ के वक़्त आदमी का ध्यान रखे कि वह इनमें से कौन सी नमाज़ पढ़ रहा है, फिर रोज़ाना की नमाज़ में सुबह की नमाज़ दो रकत, ज़ुह्र व अस्र की चार रकत मग़रिब की तीन रकत और फिर इशा की चार रकत, अगर सब एक ही तरह की होती तो हो सकता था कि पढ़ते वक़्त ये ख़ास एहसास पैदा न होता कि ये सुबह की है या ज़ुहर की है या अस्र या मग़रिब की है या इशा। लेकिन अब तो इस ख़ास बात की तरफ़ ध्यान से कोई चूक नहीं सकता ज़ुहर, अस्र में और फिर मग़रिब इशा में आगे पीछे होने का ज़रूरी रखना भी इस ध्यान के बाक़ी रखने का बड़ा जिम्मेदार है। फिर इनकी रकत अलग अलग, पहली और दूसरी रकत में सूरे हम्द के बाद कोई दूसरा सूरा पढ़ा जायेगा लेकिन बाद की दो रकतों में दूसरा सूरा न पढ़े सिर्फ़ सूरह हम्द पढ़े या फिर सूरह हम्द के बजाय चाहे तसबीहात अरबा के पढ़ने की बात है। इस से तो ज़रूर इन्सान के मन को ज़ोर देना पड़ेगा कि मुझे यहाँ क्या पढ़ना चाहिये। इस मक़सद को पाने के लिए मैं तो इस बात को बहुत पसन्द करता हूँ कि इन्सान इनमें से किसी एक का आदी न बनें बल्कि शरीयत ने Option दिया है कि (तीसरी और चौथी रकअत में) वह कभी सूरे हम्द पढ़ा करें, और कभी तसबीहाते अरबआ *(सुब्हानल्लाहि वल्हम्दुलिल्लाहि वलाइला–ह इल्लल्लाहु वल्लाहुअक्बर)* क्यों कि ऐसे में तवज्जो ज़रूर पैदा करनी पड़ेगी। लेकिन अगर वह सूरहे हम्द ही का आदी हो तो तब भी मेरे ख़्याल में तवज्जा पैदा करना इसलिये ज़रूरी होगा कि कहीं वह इसके बाद दूसरा सूरा न पढ़ने लगे।

फिर क़याम, (खड़े होना) रूकू, सजदे, और बैठने की हालत का फ़र्क़ यहाँ तक कि रुकू और सजदे हर एक में जो ज़िक्र (पढ़ना) है उसमें कुल बोल के एक जैसे (Same) होने के साथ फिर भी *''अल अज़ीमि''* और *''अल्–आला''* का फ़र्क़ रख दिया गया है। पहले सजदे से सर उठाकर बैठने में *''अस्तग़्फ़िरूल्ला–ह रब्बी व–अतूबुइलैह।''* और दूसरे सजदे से सर उठाने के बाद अगर पहली रकत हो तो खड़े होते हुये *'' बि–हौलिल्लाहि व कूवतिही व अक़ूमु व अक़्उद।''*

''अल्लाह ही की क़ूव्वत और ताक़त से खड़ा होता हूँ'' और अगर दूसरी रकत हो तो बैठ कर तशह्हुद पढ़े । चार रकत वाली नमाज़ में तीसरी और चौथी रकत में यही फ़र्क़, मतलब ये है कि किसी हद तक एक जैसा और किसी हद तक फ़र्क़, हर जगह बाक़ी रखा गया है जिसकी वजह से अगर ज़ेहन थोड़ी देर तक हाज़िर न भी रहे तो फिर उसे वापस आना पड़ता है और इन्सान को अपने मन में एक नयापन लाना ज़रूरी होता है।

नमाज़ का आख़िरी रूक्न (Step) यानी सलाम

आख़िरी रकत में तशह्हुद के बाद सलाम फ़ेरने का हुक्म है। और दुरूद (सलवात) के बोल आपको मालूम हैं। *''अल्लाहुम्–म सल्लि अला मुहम्मदिँव व आलि मुहम्मद।''*

इससे क़ुर्आन के उस हुक्म पर चलना होता है जिसमें कहा गया है कि *''इन्नल्ला–ह व मलाइ–क–तहू युसल्लू–न अलन्नबी या ऐयुहल्लज़ी–न आ–मनू सल्लू अलैहि व सल्–लमू तस्लीमा''* मगर इसमें सलवात के साथ सलाम का भी हुक्म है इसलिये नमाज़ के ख़त्म होने के वक़्त जब दुरूद (सलवात) पढ़ लिया जाये तो कहा जाता है।

''अस्सलामु अलै–क ऐयुहन नबीयु व रह्–मतुल्लाहि व ब–रा–कातुह।''

''आप पर अल्लाह की सलामती हो ऐ ख़ुदा के रसूल

(स0) और उसकी रहमत हो और ख़ास बरकतें।''

अब आयत के हुक्म की पूरी तरह पैरवी (चलना) हो गयी रसूल (स0) पर सलाम करने के बाद जैसे इनके वास्ते से अपने मुसल्मान भाइयों के लिए सलामती के लिए दुआ करता है और कहता है, *''अस्सलामु अलैना व अला इबादिल्लाहिस्सालिहीन।''*

''सलाम हो हम सब पर और सब ख़ुदा के नेक बन्दों पर और फिर *''अस्सलामु अलैकुम् व रह्—मतुल्लाहि व ब—रा—कातुह।''*

''सलाम हो तुम पर और अल्लाह की रहमत और बरकतें।''

एक रवायत में है कि किसी ने अमीरुलमोमेनीन (अ0) से पूछा ''इमामे जमाअत के पेश इमाम का *''अस्सलामु अलैकुम''* कहने का क्या मतलब है''?

हज़रत (अ0) ने फ़रमाया ''यानी इमाम ख़ुदा की तरफ़ से कहता है और जैसे जमाअत की नमाज़ में हाज़िर होने वालों को ख़ुशख़बरी देता है कि तुम्हें क़यामत के दिन ख़ुदा के अज़ाब से सलामती और अमान है।

इसका नतिजा ये होता है कि *''अस्सलामु अलैकुम''* ये दुआ का बोल नहीं है बल्कि ख़बर का बोल है जो ख़ुदा की तरफ़ से जमाअत में हाज़िर लोगों के लिये एक ख़ुशख़बरी की हैसियत रखता है।

फ़ज़्ल बिन शाज़ान की रवायत है जो इमामे रिज़ा (अ0) से है, इसमें है कि हज़रत ने फ़रमाया '' सलाम को नमाज़ के ख़त्म होने का ज़रिया रखा गया है और इसके बजाये तकबीर या तसबीह या कोई और क़िस्म की चीज़ इस लिये नहीं रखी गई है कि नमाज़ के शुरू हो जाने पर ख़ुदा की मख़लूक से बात करना नाजाएज़ हो जाता है और सिर्फ़ सिरजनहार (ख़ुदा) की तरफ़ तवज्जो हो जाती है। इसलिए नमाज़ उन से बात करने पर ख़त्म होती है और ख़ुदा के बन्दे के साथ बात चीत सलाम ही से शुरू होती है।

इमाम (अ0) के कहने की रोशनी में मै ये कह सकता हूँ कि जिस तरह आप कहीं से आते है और किसी गुट/समूह से (Group) में मिलते है तो सलाम करते हैं, इसी तरह सो कर उठते है तो सलाम करते हैं, इस बुनियाद पर कि सो जाने पर भी दुनिया की मौजूदा भीड़ से अलगाव, दूरी की हालत होती है। इसी तरह नमाज़ शुरू करके आप आस पास के लोगों से दूर हो जाते हैं और आप एक दूसरी दुनियाँ में पहुँच जाते हैं जिसे बारगाहे कुद्स समझा जा सकता है। अब जिस वक़्त आप उस बड़ी दुनिया से फिर अपनी दुनिया में वापस आते हैं यानी नमाज़ ख़त्म करते हैं तो नये सिरे से आपसे और पास बैठने वालों से मुलाक़ात का मौक़ा आता है इसलिये सबसे पहले आप सलाम करते है। *''अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व ब—रा—कातुह।''* ''अब इस रौशनी में थोड़ा सा आप आगे निगाह डाल लीजीये, देखिए तो नमाज़ में एक उठान (Uplift) नज़र आती है और एक पलटना (Return) और इन दोनों में एक तरतीब की शान पाई जाती है। जिस वक़्त बन्दे ने नमाज़ शुरू की और ख़ुदा की तारीफ़ के जीनों पर चढ़ना शुरू किया उस वक़्त एक ग़ैबत (पर्दे) का अन्दाज़ था, जैसे वह अभी ख़ुदा के दरबार से अलग और कुदरत के जलाल से ओझल होकर कह रहा था *''अलहम्दु लिल्लाहि रब्बिल आ़लमीन, अर्रहमानिर्रहीम, मालिके यौमिद्दीन''* लेकिन ज्यो—ज्यों ख़ुदा की तारीफ़ की मंज़िलों को तय करता गया, पर्दा हटता गया, यहां तक की वह अपने जलाले अहदियत ख़ुदा के तेज को अपनी निगाहों के सामने पाकर ज़रूरत वालों की तरह कहने लगा *''इय्या क नाबुदु व ईया क नस्तईन ''*। ये था उस उठान का सफ़र जहाँ वह ग़ैबत (गायब की मन्ज़िल) से हुजूर (हाजिर की मन्ज़िल) तक पहुँचा।

अब ख़ुदा के दरबार में बात और दरख़्वास्त के बाद वह पिछले पैरों वापस आने लगा तो वही रूक—रूक कर चाल इस वापसी में भी है। ये कितनी बुरी बात होती कि अगर वह ख़ुदा से बातें करते—करते एक ही बारी मुंह फेर लेता और अचानक ही इन्सानों से बाते शुरू कर देता। इसलिये वह चुपके चुपके कदम पीछे हटा रहा है। उसने चलते चलाते अपने विश्वास को ज़ाहिर किया और कहा— *''अशहदो अन ला इलाहा इल्लाहु व अशहदो अन्ना मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुह ''*

इस गवाही को देने के साथ ही उसको रसूल की सेवाएं याद आयी और दुनिया की हिदायत में आप (स0) के अनथक जतन का ख़्याल आया तो उनकी ख़िदमतों को कुबूल करने और एहसान मानने

और शुक्रिए के तौर पर उसने खुदा से आपके लिये दुरूद (सलवात) की दरख़्वास्त की *"अल्ला हुम्–म सल्लि अ़ला मुहम्मदिन व अ़ला आले मुहम्मद "*

अब वह ख़ास ख़ुदा के ख़्याल से ज़रा नीचे उतर कर रिसालत की सतह पर पहुंच चुका था जैसे दरबार से रुख़सती के सिलसिले में खुदा के अर्श से पलट कर नबूव्वत की कुर्सी के पास आ गया था, तो उसने रसूल स0 की तरफ़ रुख़ करके खुलूस के साथ आपकी वारगाह में सलाम पेश किया *"अस्सलामु अलै–क ऐयुहन् नबीयु व रहमतुल्लाहि व ब–र–कातुह।"*

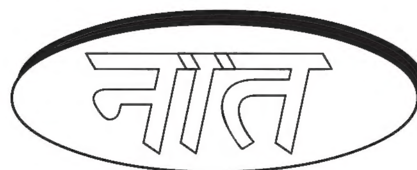
मालूम होता है कि जैसे अल्लाह के तेज के सदन में रसूल स0 के सम्मान की कुर्सी है जिन्हें अदब के साथ सलाम करता हुआ बाहर आ रहा है। अब यहाँ से हटा और डयोढ़ी के पास आया, तो बन्दों और अपने बराबर वालों का झुरमुट नज़र आया तो कहने लगा *"अस्सलामु अलैना व अला इबादिल्लाहिस्सालिहीन।' अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहे व ब–र–कातुह।"*

आम तौर पर ये दोनो सलाम कहे जाते हैं मगर इनमें वाजिब एक ही है। मैं इनकी बनावट की वजह से ये समझता हूं और कुछ हदीसों से भी ये बात साबित होती है कि पहला सलाम *" अस्सलामु अलैना व अला इबादिल्लाहिस्सालिहीन।'* सारे मुसलमानों के लेहाज़ से है जो तसव्वुर की दुनिया में उस वक़्त उसके सामने होते हैं चाहे नमाज़े जमाअत हो या फ़रादा (अकेले की नमाज़)। इसलिये सलाम की हालत छिपी हुई हैसयत रखती है और दूसरा सलाम *"अस्सलामों अलैकुम व रहमतुल्लाहे व बराकातोह।"* जमाअत की नमाज़ के लिये है, इमाम की ज़बान से उसके पीछे नमाज़ पढ़ने वाले लोगों के लिये है। इसलिये उसमें उन्हें बुलाने का अन्दाज़ है।

ये है इस्लाम की 'नमाज़' जो खुदा के भक्त होने को ज़ाहिर करने के साथ–साथ उसके बन्दों के साथ भी शिष्टाचार अच्छे तरीक़े और अच्छे मेल–जोल को सिखाने वाली है। कहीं मुसलमान इस ख़ूबसूरत इबादत को सच्चाई की पहचान के साथ पूरा करें और इसको सिर्फ़ एक रस्मी बात समझ कर भुलावे, बेसुधी और रवा–रवी के कोहरे में न छिपा दें।

+++

(जारी......................)



मुहतरमा तनज़ीम ज़हरा नक़वी 'कनीज़ अकबरपूरी'

कौन ला सकता है अहमद की क़यादत का जवाब
दो जहां में है कहां उनकी क़यादत का जवाब

दुश्मनों के साथ भी हर वक़्त है हुस्ने सुलूक
है यक़ीनन ग़ैर मुम्किन इस शराफ़त का जवाब

क़ौले ज़र्री पर फ़िदा होने लगे हैं जानो दिल
कौन देगा इस फ़साहत इस बलाग़त का जवाब

आसमां तक सरनिगूं है देखकर रिफ़अत तेरी
ख़ल्क़ में मुम्किन नहीं तेरी जलालत का जवाब

संगे दिल क्या पत्थरों ने पढ़ लिया कल्मा तेरा
बस में दुनिया के नहीं तेरी हुकूमत का जवाब

सारी दुनिया की निगाहें आप पर मरकूज़ हैं
क्या कभी मुम्किन नहीं है ऐसी सूरत का जवाब

दे गये हैं दौलते कुरआनो इतरत मुस्तफ़ा[स0]
दोनों आलम में नहीं है ऐसी दौलत का जवाब

ऐ कनीज़े सादिक़े आले नबी यसरिब को चल
खुल्द में रहना भी कब है इस सुकूनत का जवाब

+++

एकता के नाम पर

'नदल हिन्दी'

बरबरीयत होती है मेहरो वफ़ा के नाम पर
छिन गयी तहज़ीब तक अद्लो अता के नाम पर
टुकड़ टुकड़े हो रहीं हैं मुत्तहिद नस्लें तमाम
तफ़रिक़ा मेराज पर है एकता के नाम पर

+++